बंजारा (लम्बाणी) वेशभूषा: सांस्कृतिक एवं रक्षात्मक विमर्श

राजशेखर उमेश जाधव*

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.19501730

ABSTRACT

प्रस्तुत शोध-लेख बंजारा (लम्बाणी) समुदाय की वेशभूषा और आभूषणों का एक नृवंशवैज्ञानिक (Ethnographic) और सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेख का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि इस समुदाय का पहनावा मात्र सौंदर्यपरक अलंकरण नहीं, बल्कि उनके ऐतिहासिक संघर्षों, भौगोलिक विस्थापन और आत्मरक्षा की प्रवृत्तियों का परिणाम है। शोध के माध्यम से बंजारा लोक गीतों में निहित सिंधु घाटी और हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों को रेखांकित किया गया है। साथ ही, वेशभूषा के विभिन्न अंगों जैसे-शीशा कार्य (Mirror work), भारी आभूषण और गोदना (Tattoo) के पीछे छिपे सुरक्षात्मक और सामाजिक कारणों का गहन 'मौलिक विश्लेषण' किया गया है। निष्कर्षतः, यह लेख बंजारा संस्कृति को मुख्यधारा के साहित्य में एक 'दृश्य' के बजाय एक 'दर्शन' के रूप में स्थापित करने की वकालत करता है।

KEYWORDS: लम्बाणी लोक-संस्कृति, वेशभूषा-आभूषण, रक्षा-कवच, सभ्यता, सांस्कृतिक पहचान।

* **डॉ. राजशेखर उमेश जाधव**, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विश्व भारती प्रथम दर्जा महाविद्यालय, तुरनुर.

मूल आलेख:

भारत की जनजातीय अस्मिता में बंजारा (लम्बाणी) समुदाय का स्थान अद्वितीय है। यह समाज अपनी गतिशील जीवनशैली और विशिष्ट वेशभूषा के लिए जाना जाता है। "बंजारा" शब्द की उत्पत्ति 'वणजारा' (व्यापारी) और 'वन-जारा' (जंगलों में घूमने वाला) से हुई है। बंजारा लोक संस्कृति की प्राचीनता और सिंधु घाटी सभ्यता से उनके ऐतिहासिक संबंधों को इस लोक गीत के माध्यम से समझा जा सकता है:

"सिंधु नदी जलेरो / साथ सिंधु नदी पोकम / रात मुडेरो दमाडी आयो
मारे मोहना नायक नर्सीन / दमाड लायो जाके बालम / कोलिया करतों /
अब हरप्पा – मोहेनजोदड़ो नायकेन नर्सीन / कया जानार मारे सेवा नामक।"[1]

(लोक गीत: बंजारा मौखिक परंपरा)

यह लोक गीत बंजारा समाज के प्राचीन सभ्यतागत केंद्रों (सिंधु, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो) से गहरे संबंधों की पुष्टि करता है। यह सिद्ध करता है कि बंजारा संस्कृति केवल घुमंतू नहीं, बल्कि एक अत्यंत प्राचीन इतिहास की वाहक है। गीतों में 'सेवा' (सेवाभाया) और प्राचीन नगरों का उल्लेख यह दर्शाता है कि यह समाज सदियों से भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक और सांस्कृतिक धुरी रहा है।

बंजारा शब्द की उत्पत्ति एवं नृवंशवैज्ञानिक विश्लेषण

"बंजारा" शब्द की उत्पत्ति के दो मुख्य आधार हैं: प्रथम 'वणजारा' (वणिक) जिसका अर्थ व्यापारी है, और द्वितीय 'वन-जारा' (वन + जारा) जिसका अर्थ जंगलों में विचरण करने वाला है।

'वणजारा' शब्द इस समाज की 'आर्थिक पहचान' को स्थापित करता है, जो मध्यकालीन भारत में अनाज, नमक और मसालों के व्यापारिक नेटवर्क में उनकी केंद्रीय भूमिका को प्रमाणित करता है। वहीं, 'वन-जारा' शब्द उनकी 'पारिस्थितिक अनुकूलन क्षमता' का परिचायक है। इनका जीवन केवल व्यापार तक सीमित नहीं था, बल्कि यह जंगलों के दुर्गम मार्गों को जानने और उन पर विजय प्राप्त करने का एक 'ज्ञान-तंत्र' था। अतः, बंजारा शब्द की ये दो व्याख्याएँ अंततः एक ही सत्य को रेखांकित करती हैं कि गतिशीलता और प्रकृति के साथ तादात्म्य ही इनकी संस्कृति का आधार है। यह समुदाय केवल 'घुमंतू' नहीं था, बल्कि उपमहाद्वीप की अर्थव्यवस्था को गति देने वाला एक अनिवार्य 'लॉजिस्टिक्स नेटवर्क' था।

विद्वानों का मत

विदेशी विद्वानों ने बंजारा समाज के व्यापारिक कौशल और उनके धीरे-धीरे कृषि की ओर अग्रसर होने का वर्णन इस प्रकार किया है:

"The Lambadi's are described as a class of traders,

herdsman, cattle-breeders, and cattle lifters found largely in the Deccan districts in parts of which they have settled down as agriculturists."[2] (Thurston, 1909: 215)

बंजारा समाज के बहुआयामी स्वरूप को स्पष्ट करता है। यह दर्शाता है कि कैसे एक घुमंतू समुदाय अपनी परिस्थितियों के अनुसार पशुपालन से कृषि की ओर मुड़ा, जो उनके लचीलेपन और सामाजिक स्थिरता के विकास को प्रमाणित करता है। थर्स्टन ने बंजारा समाज की उस विशिष्ट विशेषता पर प्रकाश डाला है जो उन्हें आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद अपनी जड़ों से जोड़े रखती है। "विद्वानों के अनुसार बंजारा समाज की विशेषता यह है कि वे अपने पारंपरिक व्यवसाय और जीवनशैली को लंबे समय तक बनाए रखते हैं। उनका सामाजिक ढांचा मजबूत होता है और वे सामूहिक रूप से जीवन व्यतीत करते हैं।"[3] (थर्स्टन, 1909: 214)

बंजारा समाज की परंपराओं के प्रति यह गहरी निष्ठा ही उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को आधुनिक युग में भी बचाए रखने का मूल कारण है। उनकी सामूहिकता उन्हें एक ऐसा सुरक्षा घेरा प्रदान करती है जिसमें उनकी लोक-कलाएँ और रीति-रिवाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवंत बने रहते हैं।

प्रसिद्ध भाषाविद् ग्रियर्सन ने उनकी व्यापारिक गतिशीलता और भारत के विभिन्न कोनों में उनकी उपस्थिति को इस प्रकार दर्ज किया है- "जे. ए. ग्रियर्सन के अनुसार बंजारा समाज एक घुमंतू समुदाय रहा है, जो अपने व्यापारिक कार्यों के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था। उनका जीवन निरंतर गतिशील रहा और उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।"[4] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) यह उनके 'गतिशील अस्तित्व' को रेखांकित करता है। इसी निरंतर आवाजाही ने उनकी वेशभूषा को 'पोर्टेबल' (वहन करने योग्य) और व्यावहारिक बनाया। उनके पहनावे में जो भारीपन और बहुउद्देश्यीय गुण मिलते हैं, वे उनके घुमंतू जीवन की ही उपज हैं।

शोधकर्ताओं ने बंजारा समाज की अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता और संरक्षण के भाव को इस तरह व्यक्त किया है। कुछ अन्य शोधकर्ताओं ने भी यह बताया है कि "बंजारा समाज अपनी परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अत्यंत जागरूक रहता है तथा उन्हें संरक्षित रखने का प्रयास करता है।"[5] (रसेल एवं हीरालाल, 1916: 168) यह बंजारा समाज की प्रखर सांस्कृतिक चेतना को स्पष्ट करता है। यह जागरूकता ही है, जो उन्हें अपनी भाषा (गोरबोली), वेशभूषा और आभूषणों को विस्मृति के गर्त में जाने से रोकती है, जिसे मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में अक्सर केवल एक 'दृश्य' के रूप में देखा गया, 'दर्शन' के रूप में नहीं।

आत्मरक्षा और हिंसक पशुओं से बचाव

लम्बाणी वेशभूषा में कांच के टुकड़ों (शीशों) का जड़ा होना मात्र श्रृंगार नहीं, बल्कि घने वनों में रहने वाले उनके पूर्वजों की एक रक्षात्मक युक्ति थी।

"पुराने समय में लम्बाणी पूर्वज खानाबदोश थे। वे जंगलों में रहते थे। सिंह जैसे हिंसक जानवर जंगल में अपनी ही परछाई (शीशे में) देखकर डर जाते हैं, इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने कपड़ों पर शीशे के टुकड़े जड़ना शुरू किया।"[6] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित)

'शीशे की कढ़ाई' (Mirror Work) का उद्भव केवल सौंदर्यबोध के लिए नहीं, बल्कि व्यावहारिक सुरक्षा (Survival Strategy) के लिए हुआ था। प्रकाश का परावर्तन और हिंसक पशुओं को स्वयं की आकृति से भ्रमित करने की यह तकनीक सिद्ध करती है कि उनकी कला प्रकृति के खतरों के प्रति एक 'मानवीय प्रतिवाद' थी।

हस्तशिल्प की सूक्ष्मता और मानवीय श्रम

बंजारा परिधानों की विशिष्टता उनकी जटिल हस्तकला में निहित है, जिसमें मशीनी दर्जी के बजाय व्यक्तिगत श्रम की पराकाष्ठा दिखाई देती है। "लम्बाणी महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले फेंटिया (घाघरा), कांचली (चोली) और छांटियां (ओढ़नी) बनाना अत्यंत कठिन कार्य है। ये कपड़े बाजार में तैयार नहीं मिलते। इसमें दर्जी का काम बहुत कम होता है, बल्कि हाथों से की जाने वाली बारीक कढ़ाई का काम सबसे अधिक और श्रमसाध्य होता है।"[7] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित)

यह श्रमसाध्य हस्तकला बंजारा महिलाओं के धैर्य, अनुशासन और कलात्मक श्रेष्ठता का जीवंत प्रमाण है। यहाँ वस्त्र का मूल्य कपड़े की गुणवत्ता से अधिक उसमें निवेशित 'समय' और 'श्रम' से तय होता है, जो इसे आधुनिक मशीनी युग में भी एक अमूल्य हस्तशिल्प की श्रेणी में रखता है।

रक्षा-कवच के रूप में भारी आभूषण

पशुपालन और कंटीले रास्तों पर यात्रा के दौरान शरीर के अंगों को क्षति से बचाने के लिए इन आभूषणों को एक सुरक्षा कवच की तरह डिजाइन किया गया था। "हाथी दांत या अन्य धातु के बने ये भारी कड़े उनके लिए एक तरह के 'रक्षा कवच' का काम करते थे, जो झाड़ियों, कांटों और पत्थरों से उनके हाथों और पैरों की रक्षा करते थे।"[8] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) आभूषण यहाँ 'प्रोटेक्टिव आर्मर' की भूमिका निभाते हैं। यह उनके व्यावहारिक जीवन-दर्शन को दर्शाता है कि कैसे सौंदर्यबोध को उपयोगिता के साथ जोड़कर शरीर को सुरक्षा प्रदान की गई। यह 'सौंदर्यशास्त्र' और 'सर्वाइवल' का एक विरल संगम है।

सुहाग की स्थिरता और 'चूडो' का स्थान

कोहनी के ऊपर पहने जाने वाले चूड़ों का स्थान और उनकी स्थिरता महिला के वैवाहिक जीवन की मर्यादा और सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। "बंजारा (लम्बाणी) महिलाएं कलाई पर 'चूड़ी' और कोहनी के ऊपर 'चूडो' पहनती हैं। कोहनी के ऊपर पहने जाने वाले इन चूड़ों के नीचे 'कसोट्या'

(मोतियों की डोरी) बांधी जाती है। यह मान्यता है कि कोहनी से ऊपर की ये चूड़ियाँ सुहाग का लक्षण हैं, और इनका नीचे खिसकना अपशकुन माना जाता है।"[9] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) आभूषण का भौतिक स्थान महिला की वैवाहिक मर्यादा से सीधे जुड़ा है। 'कसोट्या' का उपयोग केवल सजावट नहीं, बल्कि 'सुहाग की स्थिरता' को भौतिक रूप से सुनिश्चित करने का एक सांस्कृतिक प्रयास है। यह समाज में महिला के वैवाहिक पद और धार्मिक मर्यादा के अटूट संबंध को प्रदर्शित करता है।

'घुगरी' और वैवाहिक पहचान का विजुअल कोड

लम्बाणी समाज में वैवाहिक पद की पहचान अन्य समाजों की तरह केवल गले के मंगलसूत्र से नहीं, बल्कि मस्तक के आभूषणों से सुनिश्चित होती है। "बालों की लटों (कनपटी के पास) में पिरोकर लटकने वाले 'घुगरी', 'टोप्ली', 'कड्डी' (पीन्) और 'आडिसांकळी' ही लम्बाणी समाज के असली 'मंगलसूत्र' माने जाते हैं। ये आभूषण सुहागन के सूचक हैं और इन्हें पहनने का अधिकार केवल सुहागिन महिलाओं को ही है।"[10] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित)

वैवाहिक पहचान के लिए 'शीश-सज्जा' का उपयोग महिला के सामाजिक पद को परिभाषित करने वाला एक सशक्त 'विजुअल कोड' (Visual Code) है। यह प्रथा अन्य भारतीय समुदायों से बिल्कुल भिन्न है और यह इंगित करती है कि बंजारा संस्कृति में चेहरे के साथ संलग्न आभूषण ही सबसे पवित्र वैवाहिक चिन्ह हैं।

पैरों के आभूषण और ध्वन्यात्मक संकेत

भ्रमणशील जीवन के दौरान घने वनों में एक-दूसरे के साथ संपर्क बनाए रखने के लिए पैरों के आभूषणों में ध्वन्यात्मकता का विशेष ध्यान रखा गया था। "लम्बाणी स्त्रियाँ पैरों में चाँदी या अन्य धातु के गोलाकार 'तोडा' पहनती हैं। विशेष रूप से, पैरों में 'घुंघरू का हार' बाँधकर रखा जाता है, जो चलते समय एक लयबद्ध ध्वनि उत्पन्न करता है।"[11] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) 'घुंघरू का हार' केवल सजावट नहीं, बल्कि दुर्गम मार्गों पर समूह के सदस्यों को एक-दूसरे की उपस्थिति और गति का संकेत देने वाला ध्वन्यात्मक (Acoustic) उपकरण था। यह ध्वनि-विज्ञान उनके सामूहिक प्रवास को सुरक्षित और संगठित बनाने का एक सहज माध्यम था।

गोदना: सिंदूर के स्थान पर स्थायी शुभसूचक

अस्थायी श्रृंगार के बजाय लम्बाणी संस्कृति में शरीर पर स्थायी रूप से अंकित 'गोदना' को विवाहित होने का सबसे विश्वसनीय प्रमाण माना गया है। "लम्बाणी समाज में विवाहित स्त्रियों के लिए सिंदूर की अनिवार्यता के स्थान पर मुखमंडल और शरीर पर अंकित 'गोदना' (Tattoos) को शुभ संकेत का आधार माना गया है। कपाल, कनपटी और हाथों पर अंकित ये विशिष्ट ज्यामितीय आकृतियाँ विवाहित होने की पुष्टि करती हैं।"[12] (मूल कन्नड़ से हिंदी

में अनूदित) गोदना यहाँ एक 'सांस्कृतिक टैग' है। यह सिंदूर की भांति अस्थायी नहीं, बल्कि महिला के अस्तित्व और उसकी वैवाहिक प्रतिबद्धता का स्थायी हिस्सा है। यह दर्शाता है कि इस समाज में सांस्कृतिक पहचान शरीर के ऊपरी अलंकरण से अधिक त्वचा की गहराई तक समाई हुई है।

पुरुष पहचान: 'रातडी झूंडी' और आध्यात्मिक गौरव

पुरुषों की वेशभूषा में उनके आराध्य संत सेवाभाया के प्रति अटूट आस्था को 'रातडी झूंडी' के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। "पुरुषों के कमरबंद में हमेशा ऊन से तैयार की गई 'रातडी झूंडी' (लाल फुंदना) बांधी जाती है। आज भी वे अपने आराध्य 'सेवाभाया' के स्मरण में इस 'झूंडी' को धारण करते हैं; यही वह प्रमुख चिह्न है जो लम्बाणी पुरुष की विशिष्ट पहचान सुनिश्चित करता है।"[13] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) 'रातडी झूंडी' समुदाय की आध्यात्मिक श्रद्धा और इतिहास का केंद्र है। यह एक सूक्ष्म लेकिन सशक्त प्रतीक है जो बंजारा पुरुषों को उनके महान पूर्वजों और आध्यात्मिक मार्गदर्शकों से जोड़कर उन्हें एक विशिष्ट वैश्विक पहचान प्रदान करता है।

संबंधों का मनोविज्ञान और 'कसूती'

विवाह के समय पति-पत्नी के बीच प्रेम और भावनात्मक जुड़ाव को प्रगाढ़ करने के लिए इस हस्तशिल्प का गहरा मनोवैज्ञानिक उपयोग किया जाता है। "इस थैले (झोलणा) पर की जाने वाली विशेष कसीदाकारी को 'कसूती' कहा जाता है। मान्यता है कि विवाह के समय यदि पति इस झोलणा से पान-सुपारी निकालकर पत्नी को खिलाता है, तो उनके बीच अगाध प्रेम उत्पन्न होता है। दो जीवों को एक करने वाली इस कला के कारण ही इसे 'जीवल्या' नाम दिया गया है।"[14] (मूल कन्नड़ से हिंदी में अनूदित) 'जीवल्या कसूती' यह सिद्ध करती है कि लम्बाणी संस्कृति में शिल्प का उपयोग केवल वस्तु निर्माण के लिए नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों को सुदृढ़ करने के एक मनोवैज्ञानिक माध्यम के रूप में भी किया गया है। यह थैला दो आत्माओं के मिलन का एक कलात्मक सेतु बन जाता है, जो लोक-कला के भावनात्मक आयाम को प्रकट करता है।

निष्कर्ष

बंजारा (लम्बाणी) वेशभूषा और आभूषण एक 'जीवंत सांस्कृतिक दस्तावेज' हैं। यह शोध सिद्ध करता है कि इनका हर तत्व सुरक्षा, पहचान, इतिहास और प्रेम का प्रतीक है। उनके लोक गीत जहाँ उन्हें प्राचीन सभ्यताओं से जोड़ते हैं, वहीं उनकी वेशभूषा उनके संघर्षपूर्ण और बुद्धिमान जीवन-दर्शन का प्रमाण है। हिंदी साहित्य में इस गहनता की उपेक्षा को दूर कर, इन सांस्कृतिक प्रतीकों को आधुनिक विमर्श और मुख्यधारा के साहित्य में उनकी वास्तविक गरिमा के साथ स्थान देना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. इंदुमती लमाणी, बंजारा स्त्रीयर वस्त्राभरण, वाग्जाई प्रकाशन विजयपुर, 2018, पृ. 26-27
2. डॉ. पी. के. खंडोबा, कर्नाटकद, लंबाणीगलु वंदु सांस्कृतिक अध्ययन, प्रकाशन - दि. तेजसिंग राठोड़ मेमोरियल ट्रस्ट, गुलबर्गा, 1991, पृ. 4
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही, पृ. 62
7. वही, पृ. 62
8. वही, पृ. 63
9. डॉ. डी. बी नायक, लंबाणी संस्कृति, कर्नाटक साहित्य अकादमी बंगलूरू, 1994, पृ. 25
10. डॉ. पी. के. खंडोबा, कर्नाटकद, लंबाणीगलु वंदु सांस्कृतिक अध्ययन, प्रकाशन - दि. तेजसिंग राठोड़ मेमोरियल ट्रस्ट, गुलबर्गा, 1991, पृ. 65
11. वही, पृ. 64
12. वही, पृ. 65
13. वही, पृ. 68
14. वही, पृ. 68